फातिमा (स0)का लाल
इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम

इमादुल उलमा अल्लामा सै0 मुहम्मद रज़ी साहब क़िब्ला

इन्सानी तारीख़ के हर दौर में कुछ ऐसी चुनी हुई हस्तियाँ आती रही हैं जिन्होंने दयानत और सदाक़त की हिफाज़त में अपनी जानें कुर्बान की हैं और अल्लाह की राह पर अपनी ज़िन्दगी का सारा समान लुटा दिया। अगर ऐसे दीनी सरफरोश नंगे सर मैदाने आज़माइश व परेशानी में न निकलते रहते तो यह सारी दुनिया एक आग का गढ़ा बन जाती जहाँ जिहालत व हैवानियत के शोले इन्सानियत और हक़ परस्ती की तमाम क़द्रों को जलाकर हमेशा के लिए फना कर देते। इस्लाम चूँकि फलाहे दुनियवी और नजाते उख़रवी की अलमबरदार है और बजा तौर पर इन्सानियत की हर मुश्किल का हल है इसलिए उसकी बक़ा खुद इन्सानी इक़दार की बक़ा है और उसकी मौत और ज़वाल खुद इन्सानियत की मौत और ज़वाल है और यह बक़ा सिर्फ उसी वक़्त मुमकिन हो सकती है जब इन क़द्रों की हिफाज़त करने वाले पैदा होते रहें और उनकी राह में कुर्बानियाँ पेश करते रहें। फर्ज़न्दे रसूल हज़रत इमामे हुसैन (अ0) की बेमिसाल कुर्बानी भी इसी सिलसिले की एक अहम कड़ी है और मक़सद यही था कि जिस तन्हा वसीले पर इन्सान की फलाह व नजात का इन्हेसार है इसे फना होने से बचाया जा सके और दुनिया की गुमराह ताक़तें इसकी जड़ों को न काट सकें, हक़ और बातिल अलग–अलग नज़र आने लगें और बातिल की हक़ के साथ मिलाने की जो गहरी साज़िश की गई थी वह हमेशा के लिये बेनक़ाब हो जाए और नसले इन्सानी की हक़ीक़त को समझने और हक़ को जानने वाली निगाहें आसानी से देख सकें कि इस्लाम का असली चेहरा कैसा है। दूसरी बात यह भी बड़ी अहम है कि यह कुर्बानी कोई इत्तेफाक़ी हादसा नहीं थी जिसकी लोगों को या खुद कुर्बानी पेश करने वालों को पहले से ख़बर न हो बल्कि इससे बहुत लोग पहले ही से वाक़िफ थे और सरवरे काएनात (स0) ने उसकी बार–बार पेशीनगोई फरमाकर असहाबे किबार और अहलेबैते अतहार (अ0) को इससे पूरी तरह बाख़बर कर दिया था। किसी क़ौम के आम सियासी और अख़लाक़ी हालात का हमेशा एक ख़ास धारा हुआ करता है और बड़ी हद तक उसके नतीजे भी यक़ीनी हुआ करते हैं और वाक़ेआत व हालात के इस धारे पर भरोसा करके बहुत सी बातें मुसतक़बिल के मुताल्लिक़ कही भी जा सकती हैं लेकिन बहर हाल यह ज़रूरी तो नहीं है कि वह धारा कोई नया रुख़ इख़्तियार न करे और वह पेशीनगोइयाँ बदल न सकें। मगर यह सब तो आम ज़हनी सतह की बातें हैं। लेकिन जहाँ तक वही–ए–इलाही का ताल्लुक़ है उसकी तो बात ही दूसरी है, वहाँ जो कुछ भी बताया जाता है उसकी बुनियाद न बदलने वाले और ग़ैर मुतज़लज़ल तकवीनी ज़ाब्तों पर होती है और इल्मे खुदावन्दी उन ज़ाब्तों और उनके नतीजों के न बदलने की ज़मानत देता है। वह एक लमहा के लिए भी इसका पाबन्द नहीं

होता कि ज़ाहिरी या बातिनी हालात का सिलसिला क़ायम रहे और हादसात व वाक़ेआत की तरतीब और धारा एक हाल पर जारी और बाक़ी रहे या दूसरी शकलें और दूसरे रुख़ इख़्तियार कर ले। यक़ीनन वाक़ेअ–ए–कर्बला कुछ ख़ास अख़लाक़ी और सियासी तारीख़ी हालात का अचानक इत्तेफाक़ी नतीजा ही कहा जा सकता था अगर यहाँ सवाल सिर्फ हालात ही का होता और इस कुर्बानी का बार–बार ज़िक्र सरवरे काएनात (स0) की ज़बाने पाक पर और आपसे पहले अबुल अम्बिया हज़रत आदम (अ0) से लेकर हर नबी और हर वसी की ज़बान पर और हर दौर के इलाही सहीफों में न होता। इसका मतलब यह हुआ कि वाक़ेअ–ए–कर्बला था तो तारीख़ी हालात के सिलसिले का ही नतीजा और तकवीनियात के तक़ाज़ों ही के मुताबिक़ मगर यह सिर्फ इत्तेफाक़ी और अचानक सामने नहीं आया था बल्कि अज़ल से ही इस राज़ से ख़ुदा के ख़ास बन्दों को बाख़बर कर दिया गया था जो हालात के उस धारे से और उस अज़ीम नतीजे से पूरी तरह वाक़िफ थे। यहाँ पर आलम के तकवीनी निज़ाम और उसके ज़वाबित से मुताल्लिक़ सिर्फ इतना ही समझ लेना काफी होगा कि इस निज़ाम का ख़ालिक तो यक़ीनन अल्लाह है मगर उसके इरादे को इस निज़ाम के नतीजों में कोई दख़ल नहीं है। मिसाल के तौर पर जैसे कोई आग में गिरेगा तो जल जाएगा और ज़हर खाएगा तो मर जाएगा। इस क़िस्म के इन्फिरादी तास्सुरात और नताएज का सीधा ताल्लुक़ तकवीनी नज़्म व ज़ब्त से ही है न कि इराद–ए–ख़ुदावन्दी से वरना जज़ा और सज़ा और मआद का कोई तसव्वुर ही बाक़ी न रहेगा अलबत्ता इन नताएज व आमाल से ख़ुदा की रिज़ामन्दी या नाराज़ी का ज़रूर ताल्लुक़ होता है मगर वह ताल्लुक़ इरादे की हद तक नहीं होता दूसरे यह कि आलमी हालात के इत्तेफाक़ी नताएज अल्लाह के लिए अजनबी नहीं होते, वह हर चीज़ से वाक़िफ है। उनकी अजनबियत और उनके इत्तेफाक़ी हवादिस होने की हैसियत सिर्फ हमारे नाक़िस इल्म के एतेबार से हुआ करती है। ग़र्ज़ वाक़ेअ–ए–कर्बला उस वक़्त के बहुत से मुसलमानों के लिए ख़ुद हज़रत इमामे हुसैन (अ0) और आपके साथियों के लिए अजनबी और अचानक हैसियत नहीं रखता था अगरचे यह तारीख़ी हालात के तसलसुल ही का नतीजा था। इस तरह इमामे (अ0) आली मक़ाम और आपके वफादार साथियों के जज़्ब–ए–तसलीम व रिज़ा, अज़्म व इस्तेक़लाल और सब्र व सिबात की हैसियत इस क़द्र बुलन्द और शान वाली हो जाती है जिसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती। सरवरे काएनात (स0) ने सबसे पहले उस वाक़ेए का ज़िक्र अपनी चहीती बेटी हज़रत फातिमा ज़हरा (स0) से उस वक़्त किया था जब इमामे हुसैन (अ0) की विलादत हुई थी और बच्चे को हुज़ूर की गोद में दिया गया था। आम तौर पर ऐसे मौक़े पर लोग ख़ुश हुआ करते हैं मगर हज़रत रिसालतमाब (स0) की आखों में आसू आ गए और बेटी से होने वाला वाक़ेआ बयान फरमा दिया।

कुछ अरसे बाद आँहज़रत ने उम्मुलमोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा को कुछ मिट्टी अता की थी और बताया था कि यह कर्बला की ख़ाक है और कर्बला ही हुसैन (अ0) के क़त्ल होने की जगह है फिर हुक्म दिया था कि रसूल की बीवी इस मिट्टी को हिफाज़त से रखें यहाँ तक कि जब वह वक़्त आयगा और हुसैन (अ0) शहीद होंगे तो यह मिट्टी अपने आप सुर्ख हो जाएगी। उम्मुलमोमिनीन ने उस खाक

को कलेजे से लगाकर रखा था। आख़िर 61 हि0 आ गया इमामे हुसैन (अ0) कर्बला पहुँच चुके थे। फिर आशूर का सूरज कर्बला के ख़ूनी उफ़ुक़ से निकला और बुलन्द होकर ढलने लगा। यह क़यामत के सूरज से कम न था। अस्र का वक़्त आ गया। मअरक–ए–कर्बला अपने आख़री नुक़्ते पर पहुँच चुका है। हज़रत उम्मे सलमा मदीने ही में थीं। अस्र के वक़्त आँख लग गई। ख़्वाब में देखा, सरवरे दो आलम (स0) तशरीफ लाए हैं। चेहर–ए–मुबारक पर बे इन्तिहा रन्ज व ग़म के आसार हैं। महासिने मुबारक और सरे अक़दस पर ख़ाक पड़ी हुई है। आँखों से मुसलसल आँसू बरस रहे हैं। उम्मे सलमा यह अन्दोहनाक मन्ज़र देखकर बर्दाश्त न कर सकीं और ख़ुद भी रोने लगीं फिर अर्ज़ की! ऐ ख़ुदा के आख़री रसूल! (स0) आप इतने रंजीदा क्यों हैं। आप पर कौन सी बात गराँ गुज़र गई। रसूलुल्लाह (स0) ने फरमायाः–

उम्मे सलमा! मैं अभी–अभी हुसैन को शहीद होते हुए देख आया हूँ। रसूल (स0) की बीवी की आँख खुल गई। घबराई हुई और काँपती हुई उस हुजरे की तरफ दौड़ीं जहाँ पैग़म्बर (स0) की अता की हुई मिट्टी एक शीशे में रखी हुई थी। उम्मुलमोमिनीन ने उसे ग़ौर से देखकर रोना शुरु कर दिया क्योंकि अब इस शीशे में मिट्टी न थी बल्कि उससे तो ताज़ा ख़ून उबल रहा था।

□□□

बक़िया इमामे ज़माना (अ0) और महदवीयत..................

के बाद का दौर ''इज्तेहाद'' का दौर है। इन्सानों को चाहिए कि वह अपने इल्म और अपनी अक़्ल का सही इस्तेमाल करें ताकि वही और सीरत पैग़म्बर व अइम्मा की शम–ए–हिदायत और मश्अले रहबरी से अपने मसाएल के हल के सिलसिले में फाएदा हासिल करें। आख़िरकार मश्य्यिते इलाही दोबारा इमाम (अ0) को परद–ए–ग़ैबत से ज़ाहिर करेगी। ताकि दुनिया में नज़रियाती समाज और मिसाली निज़ाम क़ायम हो। इन्सान दौरे ग़ैबत में एक इम्तिहानी और आज़माइशी मरहले से दोचार है, इसके बाद ख़ुदाई मुअल्लिम दोबारा ज़ाहिर होगा और सही को ग़लत से और हक़ को बातिल से अलग कर देगा।

हम इस हिदायत के पूरे ख़ुदाई इन्तिज़ाम को एक स्कूल से तश्बीह दे सकते हैं, गोया पहले मुख़्तलिफ दर्जों की तालीम मुकम्मल कराई गई।(अम्बिया की बेअ्सत) और तहरीरी रहनुमाई भेजी गई (वही) आख़री दर्जे की नज़रियाती तकमील शरीअत की तकमील की सूरत में की गई (पैग़म्बरे इस्लाम की बेअ्सत) फिर ग्यारह इमामों ने उस तालीम को अमली तौर पर करके दिखाया। (इमामत का दौर) इसके बाद मुअल्लिम को ग़ैबत के पर्दे में छुपा लिया गया और तालिबे इल्मों को छोड़ दिया गया कि अक़्द व समझ और इस्तेदाद के बल बूते पर इम्तिहान दें (ग़ैबत का ज़माना) इसके बाद मुअल्लिम दोबारा ज़ाहिर होंगे और सही जवाब की अमली तौर पर निशानदही फरमाएँगे (ज़हूर) इस तश्बीह के ज़रिए हम ग़ैबत के फलसफे को थोड़ा सा समझ सकते हैं।